



वीतराग-विज्ञान (अप्रैल-मासिक) * 26 मार्च 2011 • वर्ष 29 • अंक 9

सम्पादकीय

नियमसार : एक अनुशीलन

निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार

(गाथा ९५ से गाथा १०६ तक)

नियमसार गाथा ९५

नियमसार अनुशीलन भाग-२ में अबतक परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार की चर्चा १८ गाथाओं में समाप्त हुई। अब निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार आरंभ होता है।

नियमसार की ९५वीं गाथा और निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार की पहली इस गाथा में निश्चयप्रत्याख्यान के स्वरूप को समझाते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा ।

अप्पाणं जो झायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स ॥९५॥

(हरिगीत)

सब तरह के जल्प तज भावी शुभाशुभ भाव को।

जो निवारण कर आत्म ध्यावे उसे प्रत्याख्यान है ॥९५॥

सम्पूर्ण जल्प अर्थात् सम्पूर्ण वचन विस्तार को छोड़कर और भावी शुभ-अशुभ भावों का निवारण करके जो मुनिराज आत्मा को ध्याते हैं, तब उन मुनिराजों को प्रत्याख्यान होता है।

इस गाथा का भाव टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह निश्चयनय से कहे गये प्रत्याख्यान के स्वरूप का आख्यान है।

यहाँ व्यवहारनय की अपेक्षा मुनिराज दिन-दिन में भोजन करके फिर योग्यकाल तक के लिए अन्न, पीने योग्य पदार्थ, खाद्य और लेह्य की रुचि छोड़ते हैं - यह व्यवहारप्रत्याख्यान का स्वरूप है।

निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त वचन रचना के प्रपंच (विस्तार) के परिहार के द्वारा शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद से नये शुभाशुभ द्रव्यकर्मों और भावकर्मों का संवर होना निश्चयप्रत्याख्यान है।

जो अंतर्मुख परिणति के द्वारा परमकला के आधाररूप अति अपूर्व आत्मा को सदा ध्याता है, उसे नित्यप्रत्याख्यान है।”

स्वामीजी इस गाथा का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“ऐसा कहा कि व्यवहारनय के कथन से, मुनिराज प्रतिदिन भोजन करके योग्य

काल पर्यन्त अन्न, पान, खाद्य, लेह्य की रुचि छोड़ देते हैं - यह व्यवहारप्रत्याख्यान का स्वरूप है। जिसने अन्तर में चैतन्य के आश्रय से निश्चयप्रत्याख्यान प्रगट किया है, उसी मुनि को ऐसा व्यवहार-प्रत्याख्यान होता है।^१

निश्चयनय से समस्त प्रशस्त-अप्रशस्त वचनरचना के प्रपंच के परिहार द्वारा शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद से जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का संवर हुआ, वह प्रत्याख्यान है। आत्मा का शुद्धज्ञान त्रिकाल है; उसकी भावना के प्रसाद से जो वीतरागदशा प्रगट हुई, वही निश्चय से प्रत्याख्यान है।^२

आत्मा के स्वभाव में अन्तर्मुख होकर उसका ध्यान करने से ही वीतरागदशारूप परमकला प्रगट होती है। शुद्धपरिणामन में आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी का आधार नहीं होता।^३”

इस गाथा और इसकी टीका में अत्यन्त स्पष्टरूप से कहा गया है कि आत्मा का ध्यान ही प्रत्याख्यान है; क्योंकि ध्यान अवस्था में निश्चय-व्यवहार प्रत्याख्यान (त्याग) सहज ही प्रगट हो जाते हैं।

यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि टीका में दिने-दिने शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अर्थ स्वामीजी प्रतिदिन करते हैं ॥१५॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज तथा चोक्तं समयसारे - तथा समयसार में भी कहा है - ऐसा लिखकर एक गाथा प्रस्तुत करते हैं, जो इसप्रकार है -

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।

तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेयव्वं ॥४६॥^४

(हरिगीत)

परभाव को पर जानकर परित्याग उनका जब करे।

तब त्याग हो बस इसलिए ही ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥४६॥

जिसकारण यह आत्मा अपने आत्मा से भिन्न समस्त पर-पदार्थों का 'वे पर हैं' - ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है, त्याग करता है; उसी कारण प्रत्याख्यान ज्ञान ही है। - ऐसा नियम से जानना चाहिए।

तात्पर्य यह है कि अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था होना ही प्रत्याख्यान है, त्याग है; अन्य कुछ नहीं।

इस गाथा का भाव स्वामीजी प्रवचनरत्नाकर में इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“परद्रव्य को पररूप से जाना तो परभाव का ग्रहण नहीं हुआ, वही उसका त्याग है। राग की ओर उपयोग के जुड़ान से जो अस्थिरता थी; उस ज्ञानोपयोग के ज्ञानस्वभावी

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७६३

२. वही, पृष्ठ ७६३-७६४

३. वही, पृष्ठ ७६४

४. समयसार, गाथा ३४

भगवान आत्मा में स्थिर होने पर अस्थिरता उत्पन्न ही नहीं हुई, बस इसे ही प्रत्याख्यान कहते हैं। इसलिए स्थिर हुआ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है। ज्ञान के सिवाय दूसरा कोई भाव प्रत्याख्यान नहीं है। ज्ञायक चैतन्यसूर्य में ज्ञान का स्थिर हो जाना ही प्रत्याख्यान है।^१”

आत्मा को जानना ज्ञान है और आत्मा को ही लगातार जानते रहना प्रत्याख्यान है, त्याग है, ध्यान है। प्रत्याख्यान, त्याग और ध्यान -ये सभी चारित्रगुण के ही निर्मल परिणामन हैं; जो ज्ञान की स्थिरतारूप ही हैं। अतः यह ठीक ही कहा है कि स्थिर हुआ ज्ञान ही प्रत्याख्यान है ॥४६॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव तथा समयसारव्याख्यायां ह्य तथा समयसार की व्याख्या आत्मख्याति टीका में भी कहा है ह्य ऐसा लिखकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

(आर्या)

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः ।

आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते ॥४७॥^२

(रोला)

नष्ट हो गया मोहभाव जिसका ऐसा मैं।

करके प्रत्याख्यान भाविकर्मों का अब तो ॥

वर्त रहा हूँ अरे निरन्तर स्वयं स्वयं के।

शुद्ध बुद्ध चैतन्य परम निष्कर्म आत्म में ॥४७॥

जिसका मोह नष्ट हो गया है ह्य ऐसा मैं अब भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके चैतन्यस्वरूप निष्कर्म आत्मा में आत्मा से ही निरन्तर वर्त रहा हूँ।

इस कलश में तो यह बात स्पष्टरूप से सामने आ जाती है कि आत्मध्यान ही वास्तविक प्रत्याख्यान है; क्योंकि इसमें तो साफ-साफ शब्दों में कहा गया है कि प्रत्याख्यान करके अब मैं तो आत्मा में ही वर्त रहा हूँ ॥४७॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज तथाहि - लिखकर एक छन्द स्वयं लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

(मंदाक्रांता)

सम्यग्दृष्टिस्त्यजति सकलं कर्मनोकर्मजातं

प्रत्याख्यानं भवति नियतं तस्य संज्ञानमूर्तेः ।

सच्चारित्राण्यघकुलहराण्यस्य तानि स्युरुच्चैः

तं वंदेहं भवपरिभवक्लेशनाशाय नित्यम् ॥१२७॥

१. प्रवचनरत्नाकर (हिन्दी), भाग-२, पृष्ठ ८३

२. समयसार, कलश २२८

(हरिगीत)

जो ज्ञानि छोड़े कर्म अर नोकर्म के समुदाय को।
 उस ज्ञानमूर्ति विज्ञजन को सदा प्रत्याख्यान है॥
 और सत् चारित्र भी है क्योंकि नाशे पाप सब।
 वन्दन करूँ नित भवदुखों से मुक्त होनेके लिए॥१२७॥

जो सम्यग्दृष्टि समस्त कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़ता है; उस सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को सदा प्रत्याख्यान है। उसे पापसमूह का नाश करनेवाला सम्यक्चारित्र भी अतिशयरूप होता है। भव-भव में होनेवाले क्लेशों का नाश करने के लिए उसे मैं नित्य वंदन करता हूँ।

इस कलश का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैंह
 “जिस सम्यग्दृष्टि को कर्म-नोकर्म से भिन्न चैतन्यवस्तु का भान हो गया; वह कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़कर जब चैतन्य में लीन होता है, तब उसे सदा प्रत्याख्यान है।
 जो अपना मूलस्वरूप न हो, उसका ही त्याग होता है; क्योंकि जो अपना मूलस्वरूप हो, उसका त्याग ही नहीं सकता।

जो सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञानानन्दस्वरूप को जानता हुआ उसमें लीन होता है, वह सम्यग्दृष्टि सम्यग्ज्ञान की मूर्ति है और उसे सदा ही राग का त्याग वर्तता है।

यहाँ तो प्रत्याख्यान सिद्ध करना है, इसलिये राग के त्याग करने की बात की है; दृष्टि के विषय में तो आत्मा को रागादि का ग्रहण-त्याग है ही नहीं।”

इस कलश में यही कहा गया है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित चारित्र धारण करनेवाले सन्तों के तो प्रत्याख्यान (त्याग) सदा वर्तता है। भव का अभाव करनेवाले प्रत्याख्यान की मैं सदा वंदना करता हूँ॥१२७॥

नियमसार गाथा ९६

अब इस गाथा में यह बताते हैं कि ज्ञानी यह विचारते हैं कि मैं अनन्तचतुष्टयस्वरूप हूँ। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ।
 केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी॥९६॥

(हरिगीत)

ज्ञानी विचारें इसतरह यह चिन्तवन उनका सदा।
 केवल्यदर्शन-ज्ञान-सुख-शक्तिस्वभावी हूँ सदा॥९६॥

ज्ञानी इसप्रकार चिन्तवन करते हैं कि मैं केवलज्ञानस्वभावी हूँ, केवलदर्शनस्वभावी हूँ, मैं सुखमय (केवलसुखस्वभावी) हूँ और केवल-शक्तिस्वभावी हूँ।

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७६६

इस गाथा का भाव टीकाकार मुनिराज इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यह अनन्तचतुष्टयात्मक निज आत्मा के ध्यान के उपदेश का कथन है। यहाँ समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त, सम्पूर्णतः अन्तर्मुख, परमतत्त्वज्ञानी जीव को शिक्षा दी गई है।

किसप्रकार की शिक्षा दी गई ? - ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं कि सादि-अनन्त, अमूर्त, अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से शुद्ध स्पर्श-रस-गंध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गल परमाणु की भाँति; मैं केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख तथा केवलशक्तियुक्त परमात्मा हूँ - ज्ञानी को ऐसी भावना करना चाहिए और निश्चयनय से मैं सहजदर्शनस्वरूप हूँ, मैं सहजचारित्रस्वरूप हूँ तथा मैं सहज चित्-शक्तिस्वरूप हूँ - ऐसी भावना करना चाहिए।”

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस गाथा का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“केवलज्ञान-दर्शन-सुख और शक्तिसम्पन्न परमात्मा ही मैं हूँ।

त्रिकाली भगवान आत्मा निश्चय है और उस स्वभाव के आश्रय से जो केवलज्ञानादि प्रगट हुये, वे शुद्धसद्भूतव्यवहार हैं; मैं उनका ही आधार हूँ; अपूर्णता का, विकार का मैं आधार नहीं हूँ।

जैसे परमाणु अपनी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की शुद्धपर्याय का आधार है; वैसे ही मेरा आत्मा भी शुद्ध केवलज्ञानादि चतुष्टय का आधार है।

जैसे केवली परमात्मा हैं, वैसे ही मैं हूँ - ऐसे अपने स्वभाव की भावना करना अर्थात् अल्पज्ञता अथवा विकार का लक्ष छोड़कर पूर्णस्वभाव का ही आश्रय करके उसमें एकाग्र होना। अल्पज्ञता के समय भी पूर्णता के आधाररूप अपने स्वभाव को ही देख, उसी के आधार से पूर्ण पर्याय विकसित होगी।

प्रत्याख्यान तो वीतरागता है और वह स्वभाव के आश्रय से होती है, इसलिए पूर्ण स्वभाव का आश्रय करनेवाले को ही सच्चा प्रत्याख्यान होता है। व्यवहारनय से मैं शुद्धपर्यायों से युक्त परमात्मा हूँ हूँ ऐसी भावना करना और निश्चय से मैं सहज-ज्ञानस्वरूप हूँ, सहजदर्शनस्वरूप हूँ, सहजचारित्रस्वरूप हूँ, और सहजचित्शक्तिस्वरूप हूँ - ऐसी भावना करना। इसमें पर्याय की बात नहीं है, किन्तु त्रिकाली स्वरूप की बात है, इसमें सहजज्ञान-दर्शन आदि भेदों का भी विकल्प नहीं है। चार भेदों के ऊपर दृष्टि जाये तब तो विकल्प उठता है।

अभेदरूप सहजस्वरूप निश्चय है और उसकी भावना करने पर जो केवलज्ञानादि पर्यायों प्रगट हो जाती हैं, वह शुद्धव्यवहार है।

धर्म की विशेषता बाहर में नहीं होती; धर्म तो आत्मा में होता है, बाहर में नहीं।

ज्ञान को अन्तर्मुख करके एकाग्र करना ही धर्मी की विशेषता है। धर्मी तो स्वभाव का आश्रय लिए हुए पड़ा है, इसलिए उसके स्वभाव की खान में से निर्मल-निर्मल पर्यायें प्रगट होती जाती हैं। अपने स्वभाव की भावना करके उसमें एकाग्र होना प्रत्याख्यान की क्रिया है।^१”

इस गाथा में यह कहा गया है कि ज्ञानी ऐसा सोचते हैं कि मैं अनन्तचतुष्टयस्वरूप हूँ; पर टीकाकार कहते हैं कि ज्ञानी को ऐसा सोचना चाहिए कि मैं अनन्तचतुष्टयस्वरूप हूँ।

आप कह सकते हैं कि इसमें क्या अन्तर है, एक ही बात तो है; पर भाईसाहब! गाथा में कहा है कि ज्ञानी ऐसा सोचते हैं और टीका में कहते हैं कि सोचना चाहिए - यह साधारण अन्तर नहीं है; क्योंकि जब ज्ञानी सदा ऐसा सोचते ही हैं तो फिर यह कहने की क्या आवश्यकता है कि उन्हें ऐसा सोचना चाहिए? अरे, भाई! उपयोग बार-बार बाहर चला जाता है; इसलिए आचार्यदेव अपने शिष्यों को ऐसा उपदेश देते हैं कि सदा इसीप्रकार के चिन्तन में रत रहो ॥९६॥

इसके उपरान्त टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ - तथा एकत्व सप्तति में भी कहा है - ऐसा लिखकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

(अनुष्टुभ्)

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः ।

तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम् ॥४८॥^२

(रोला)

केवलदर्शनज्ञानसौख्यमय परमतेज वह ।

उसे देखते किसे न देखा कहना मुश्किल ॥

उसे जानते किसे न जाना कहना मुश्किल ।

उसे सुना तो किसे न सुना कहना मुश्किल ॥४८॥

वह परमतेज केवलज्ञान, केवलदर्शन और केवलसौख्यस्वभावी है। उसे जानते हुए क्या नहीं जाना, उसे देखते हुए क्या नहीं देखा और उसका श्रवण करते हुए क्या नहीं सुना ?

इस छन्द के भाव को स्वामीजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“अहो! अपना आत्मा परमतेज केवलज्ञान-दर्शन-सुखस्वभावी है। ऐसे अपने आत्मा को जान लेने पर क्या नहीं जान लिया? जिसने आत्मा को जान लिया, उसने

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७६९-७७०

१. पद्मनन्दिपंचविंशति, एकत्वसप्तति अधिकार, छन्द २०

सबकुछ जान लिया। जिसने आत्मा को देखा उसने क्या नहीं देखा? तीन लोक के दृष्टा को जिसने देख लिया, उसने सब देख लिया। जिसने ऐसे आत्मा का श्रवण किया, उसने क्या नहीं श्रवण किया? भगवान आत्मा की बात जिसने सुनी, उसने चारों अनुयोगों का सार सुन लिया। यहाँ बाँचने की बात न लेकर श्रवण की बात ली है, अर्थात् पात्र होकर गुरुगम से सुनना चाहिये।”

इस छन्द में अत्यन्त स्पष्टरूप से यह कहा गया है कि अनन्तचतुष्टय स्वभावी जो अपना आत्मा है; उसे जान लेने पर, देख लेने पर, सुन लेने पर; कुछ जानना-देखना-सुनना शेष नहीं रहता। अतः एक आत्मा को ही सुनो, देखो, जानो; अन्यत्र भटकने की क्या आवश्यकता है?॥४८॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज एक छंद लिखते हैं, जो इसप्रकार है-

(मालिनी)

जयति स परमात्मा केवलज्ञानमूर्तिः

सकलविमलदृष्टिः शाश्वतानंदरूपः ।

सहजपरमचिच्छक्त्यात्मकः शाश्वतोयं

निखिलमुनिजनानां चित्तपंकेजहंसः ॥१२८॥

(अडिल्ल)

मुनिराजों के हृदयकमल का हंस जो।

निर्मल जिसकी दृष्टि ज्ञान की मूर्ति जो ॥

सहज परम चैतन्य शक्तिमय जानिये।

सुखमय परमात्मा सदा जयवंत है ॥१२८॥

सभी मुनिराजों के हृदयकमल का हंस, केवलज्ञान की मूर्ति, सम्पूर्ण निर्मलदृष्टि से सम्पन्न, शाश्वत आनन्दरूप, सहजपरमचैतन्यशक्तिमय यह शाश्वत परमात्मा जयवंत वर्त रहा है।

इस छन्द में अत्यन्त भक्तिभाव से शाश्वत परमात्मा की स्तुति की गई है। उन्हें मुनिराजों के हृदयकमल का हंस बताया गया है, केवलज्ञान की मूर्ति कहा गया है, निर्मलदृष्टि से सम्पन्न, शाश्वत आनन्दमय और चैतन्य की शक्तिमय कहा गया है ॥१२८॥

नियमसार गाथा ९७

अब इस गाथा में यह बता रहे हैं कि ज्ञानी जीव सदा किसप्रकार का चिन्तवन करते रहते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७७१

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी ॥१७॥
(हरिगीत)

ज्ञानी विचारें देखे-जाने जो सभी को मैं वही ।
जो ना ग्रहे परभाव को निज भाव को छोड़े नहीं ॥१७॥

ज्ञानी इसप्रकार चिन्तवन करता है कि यह भगवान आत्मा अर्थात् मैं निजभाव को छोड़ता नहीं और किसी भी परभाव को ग्रहण नहीं करता; मात्र सबको जानता-देखता हूँ ।

इस गाथा का भाव टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं-
“यहाँ परमभावना के सम्मुख ज्ञानी को शिक्षा दी गई है ।

जो कारणपरमात्मा; समस्त पापरूपी बहादुर शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले, त्रिकाल निरावरण, निरंजन, निजपरमभाव को कभी नहीं छोड़ता; पाँच प्रकार के संसार की वृद्धि के कारणभूत, विभावरूप पुद्गलद्रव्य के संयोग से उत्पन्न रागादिरूप परभावों को ग्रहण नहीं करता और निश्चय से स्वयं के निरावरण परमबोध से निरंजन सहजज्ञान, सहजदृष्टि, सहजचारित्र स्वभाव धर्मों के आधार-आधेय संबंधी विकल्पों से रहित, सदा मुक्त तथा सहज मुक्तिरूपी स्त्री के संभोग से उत्पन्न होनेवाले सौख्य के स्थानभूत कारणपरमात्मा को निज निरावरण परमज्ञान द्वारा जानता है और उसीप्रकार के सहज अवलोकन द्वारा देखता है; वह कारणसमयसार मैं हूँ - ऐसी भावना सम्यग्ज्ञानियों को सदा करना चाहिए ।”

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस गाथा का भाव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“निजभाव अर्थात् अपने त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को आत्मा कभी नहीं छोड़ता । वस्तु का स्वभाव कभी नहीं छूटता । जैसे गुड़ अपने मिठास को कभी नहीं छोड़ता, वैसे ही आत्मा कभी अपने सहजस्वरूप को नहीं छोड़ता ।

वस्तु के स्वभाव में एक समय का विकार कभी हुआ ही नहीं, त्रिकाली द्रव्य-स्वभाव ने कभी विकार को पकड़ा ही नहीं, वह तो त्रिकाल सबका ज्ञायक-दर्शक है और वह ऐसा आत्मा ही मैं हूँ - इसप्रकार ज्ञानी अपने आत्मा का चिन्तवन करके उसमें एकाग्र होता है ।

आचार्यदेव प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि पर्यायबुद्धि को छोड़कर स्वभावबुद्धि करके अपने आत्मा का आश्रय कर!^१

पूर्णस्वभाव तो जैसे का तैसा शाश्वत है, उसकी भावना और एकाग्रता करने से ही राग का प्रत्याख्यान होता है ।^२

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७७४

२. वही, पृष्ठ ७७४

भगवान परमात्मा त्रिकाल समस्त विकार के अभावस्वरूप ही है, उसका आश्रय लेने पर मिथ्यात्वादि पापों की उत्पत्ति नहीं होती; इसलिए वह कारणपरमात्मा समस्त पापरूपी सेना को लूटनेवाला है ह्व ऐसा कहा। उस कारणपरमात्मा के आश्रय से ही मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय का प्रत्याख्यान हो जाता है अर्थात् उन भावों की उत्पत्ति ही नहीं होती। वह कारणपरमात्मा अपने परमभाव को कभी छोड़ता नहीं।^१

एक छूटे हुए पुद्गलपरमाणु को स्वभावपुद्गल कहते हैं और स्कंध को विभाव-पुद्गल कहते हैं। आत्मा को विकार उत्पन्न करने में एक छूटा परमाणु निमित्त नहीं होता, किन्तु विभावपुद्गल ही निमित्त होता है; तथापि उस पुद्गलकर्म के निमित्त से होनेवाले परभाव को भगवान कारणपरमात्मा कभी ग्रहण नहीं करता। पर्याय में क्षणिक रागादि परभाव होते हैं, उन्हें आत्मा अपने स्वभाव में कभी ग्रहण नहीं करता। वस्तु तो त्रिकाल एकरूप जैसी की तैसी है। उस वस्तुस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना ही प्रत्याख्यान है। वस्तुस्वभाव में राग का ग्रहण ही नहीं है; अतः वास्तव में राग का त्याग करना भी नहीं है।

सचमुच बात तो यह है कि वस्तुस्वभाव को लक्ष में लेकर उसमें एकाग्र होने पर जो निर्मलपर्याय उत्पन्न होती है, उस पर्याय में राग का अभाव है; इसलिए उसका नाम प्रत्याख्यान है।^२

इस गाथा में मात्र यही कहा गया है कि यह भगवान आत्मा अपने स्वभाव भाव को कभी छोड़ता नहीं है और रागादिभावों सहित सम्पूर्ण परभावों का कभी ग्रहण नहीं करता; क्योंकि इसमें एक त्यागोपादान-शून्यत्वशक्ति है, जिसके कारण यह पर के ग्रहण-त्याग से पूर्णतः शून्य है। यह तो सभी स्व-पर पदार्थों को मात्र जानता-देखता है, उनमें कुछ करता नहीं है। ऐसा यह भगवान आत्मा मैं स्वयं ही हूँ। ज्ञानी जीव सदा ऐसा चिन्तवन करते हैं।।९७।।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज तथा चोक्तं श्री पूज्यपादस्वामिभिः - तथा पूज्यपाद स्वामी ने भी कहा है - कहकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

(अनुष्टुभ्)

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुंचति ।

जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥४९॥^३

(हरिगीत)

जो गृहीत को छोड़े नहीं पर न ग्रहे अग्राह्य को ।

जाने सभी को मैं वही है स्वानुभूति गम्य जो ॥४९॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७७५

२. वही, पृष्ठ ७७५-७७६

३. समाधिशतक, छन्द २०

जो अग्राह्य को ग्रहण नहीं करता, गृहीत को अर्थात् शाश्वत शुद्धस्वभाव को छोड़ता नहीं है और सभी को सभी प्रकार से जानता है; वह स्वसंवेद्य तत्त्व में स्वयं ही हूँ।

इस छन्द में अत्यन्त स्पष्टरूप से यह कहा गया है कि जो रागादि विकारी भाव अग्राह्य हैं, ग्रहण करने योग्य नहीं; उन्हें जो ग्रहण नहीं करता और जिसे अनादिकाल से ग्रहण किया हुआ है वह ऐसा जो अपना ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है, उसे जो छोड़ता नहीं है तथा जो सभी पदार्थों को देखता-जानता है, वह स्वसंवेद्य पदार्थ, वह स्वानुभूतिगम्य पदार्थ मैं हूँ। हूँ ज्ञानी ऐसा चिन्तवन करते हैं।

इसी को धर्मध्यान कहते हैं, प्रत्याख्यान कहते हैं। साधर्मी भाई-बहिनों को करने योग्य एकमात्र कार्य यही है ॥४९॥

इसके बाद टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव चार छन्द स्वयं लिखते हैं; जिसमें पहला छन्द इसप्रकार है -

(वसंततिलका)

आत्मानमात्मनि निजात्मगुणाढ्यमात्मा

जानाति पश्यति च पंचमभावमेकम् ।

तत्याज नैव सहजं परभावमन्यं

गृह्णाति नैव खलु पौद्गलिकं विकारम् ॥१२९॥

(हरिगीत)

आतमा में आतमा को जानता है देखता।

बस एक पंचमभाव है जो नंतगुणमय आतमा ॥

उस आतमा ने आजतक छोड़ा न पंचमभाव को।

और जो न ग्रहण करता पुद्गलिक परभाव को ॥१२९॥

यह आत्मा, आत्मा में अपने आत्मा संबंधी गुणों से समृद्ध आत्मा को अर्थात् एक पंचमभाव को जानता-देखता है; क्योंकि इसने उस सहज पंचमभाव को कभी छोड़ा ही नहीं है और यह पौद्गलिक विकार रूप परभावों को कभी ग्रहण भी नहीं करता।

गुरुदेवश्री कानजी स्वामी इस छन्द के भाव को इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“चैतन्यमूर्ति पंचमभावस्वरूप आत्मा को आत्मा जानता है। पंचमभाव को जाननेवाली तो पर्याय है, परन्तु वह पर्याय आत्मा में अभेद है। द्रव्य-पर्याय का भेद नहीं, इसलिए ‘आत्मा आत्मा को जानता है’ - ऐसा कहा है। वास्तव में जानने का कार्य तो पर्याय ही करती है, ध्रुवतत्त्व जानने का कार्य नहीं करता। वहाँ उस पर्याय का लक्ष ध्रुवतत्त्व के ऊपर है; तथापि वह पर्याय स्वयं अन्धी रहकर द्रव्य को नहीं जानती, वह द्रव्य को जानने के साथ-साथ अपने को भी बराबर जानती है। प्रगट होती हुई पर्याय स्वयं अपने को स्वसंवेदन से जानती हुई प्रगट होती है।^१

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७७९

यहाँ 'आत्मा आत्मा को जानता है' - ऐसा कहकर पर्याय समय-समय आत्मा से अभेद होती जाती है - ऐसा बतलाया है।

औदयिकादि पर्यायों के ऊपर लक्ष नहीं है, लक्ष तो ध्रुव पारिणामिक भाव पर है; इसलिए ऐसा कहा कि आत्मा एक पंचमभाव को जानता है, परंतु वहाँ ऐसा मत समझना कि अकेले सामान्य का ही ज्ञान है और विशेष का ज्ञान है ही नहीं। द्रव्य और पर्याय दोनों का ज्ञान साथ ही होता है। वर्तमान पर्याय आत्मा के साथ अभेद होकर आत्मा को जानती है। पर्यायरूप परिणमे बिना अकेला द्रव्य द्रव्य को जानता है - ऐसा नहीं है।

आत्मा आत्मा में एक पंचमभाव को जानता है - ऐसा कहा; परन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि अन्य चार भावों का ज्ञान ही नहीं होता। उनका भी ज्ञान तो होता है, किन्तु दृष्टि में अभेद आत्मा की ही मुख्यता है; इसलिए ऐसा कहा कि आत्मा एक पंचमभाव को जानता-देखता है। जिसने अपने सहज एक पंचमभाव को कभी छोड़ा ही नहीं और अन्य परभावों को कभी ग्रहण किया ही नहीं ह्व ऐसे आत्मा का भान होने के पश्चात् ही उसमें एकाग्र होने पर राग का त्याग हो जाता है और उसी का नाम प्रत्याख्यान है। जिसने चैतन्य ज्ञायकभाव को कभी छोड़ा नहीं और विकार को अपने में ग्रहण किया नहीं - ऐसा जो परम-पारिणामिक भाव है, उसकी प्रतीति करके उसमें एकाग्र होना ही प्रत्याख्यान है।^१

उक्त कलश में यह कहा गया है कि यह आत्मा, अनंत गुणों से समृद्ध पंचमभावरूप अपने आत्मा को अपने आत्मा में ही जानता-देखता है। इस आत्मा ने उक्त परमपारिणामिकभावरूप पंचमभाव को कभी छोड़ा नहीं है और विकाररूप पौद्गलिक विभावभावों को कभी ग्रहण नहीं किया ॥१२९॥

दूसरा व तीसरा छन्द इसप्रकार है -

(शार्दूलविक्रीडित)

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिंतामणा-
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम् ।
तच्चित्रं न विशुद्धपूर्णसहजज्ञानात्मने शर्मणे ।
देवानाममृताशनोद्भवरुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने ॥१३०॥
निर्द्वन्द्वं निरुपद्रवं निरुपमं नित्यं निजात्मोद्भवं
नान्यद्रव्यविभावनोद्भवमिदं शर्माभृतं निर्मलम् ।
पीत्वा यः सुकृतात्मकः सुकृतमप्येतद्विहायाधुना
प्राप्नोति स्फुटमद्वितीयमतुलं चिन्मात्रचिंतामणिम् ॥१३१॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७७९-७८०

(रोला)

अन्य द्रव्य के आग्रह से जो पैदा होता।
 उस तन को तज पूर्ण सहज ज्ञानात्मक सुख की॥
 प्राप्ति हेतु नित लगा हुआ है निज आत्म में।
 अमृतभोजी देव लगे क्यों अन्य असन में॥१३०॥
 अन्य द्रव्य के कारण से उत्पन्न नहीं जो।
 निज आत्म के आश्रय से जो पैदा होता॥
 उस अमृतमय सुख को पी जो सुकृत छोड़े।
 प्रगटरूप से वे चित् चिन्तामणि को पावें॥१३१॥

अब अन्य द्रव्य का आग्रह (एकत्व) करने से उत्पन्न होनेवाले इस विग्रह (शरीर-राग-द्वेष-कलह) को छोड़कर; विशुद्ध, पूर्ण, सहज ज्ञानात्मक सुख की प्राप्ति के लिए मेरा यह अन्तर चैतन्यचिन्तामणिरूप आत्मा निरन्तर मुझमें ही लगा है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि अमृतभोजन जनित स्वाद को चखनेवाले देवों को अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है ?

जो जीव अबतक पुण्यकार्य में लगा हुआ है; अब इस सुकृत (पुण्यकार्य) को छोड़कर द्वन्द्वरहित, उपद्रवरहित, उपमारहित, नित्य निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले, अन्य द्रव्यों की विभावना से उत्पन्न न होनेवाले इस निर्मल सुखामृत को पीकर अद्वितीय, अतुल, चैतन्यभावरूप चिन्तामणि को प्रगटरूप से प्राप्त करता है।

इन छन्दों के भाव को स्वामीजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“देखो! आत्मा का स्वाद आए बिना विषयों को छोड़ना चाहे तो वे छूट नहीं सकते। आत्मा के सहज आनन्द का भान होने पर विषयों में सुखबुद्धि नियम से छूट जाती है, रहती ही नहीं। जहाँ चैतन्य के सहज आनन्द का स्वाद आया, वहाँ विषयों की इच्छा नहीं होती।

अहो! टीकाकार कहते हैं कि हमारा मन तो सुखनिधान चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही लगा है अर्थात् अन्य सब भावों का हमारे प्रत्याख्यान हो गया है। जैसे देवों को अमृत का भोजन मिलने पर अन्य दूधपाक, हलवा आदि के भोजन सहज ही छूट गये होते हैं; वैसे ही हमें चैतन्य के सहजानन्द के स्वाद के मिलने पर शुभाशुभभावों का प्रत्याख्यान हो गया है, हमारा अन्तर तो निरन्तर चैतन्यस्वरूप में ही लगा है।^१

जैसे अग्नि ईंधन से शान्त नहीं होती, वैसे ही विषय-वासना विषयों को भोगने से नहीं मिटती; किन्तु चैतन्य के आनन्द का भोग होने पर वह स्वयं ही टल जाती है। चैतन्यसुख के अनुभव के समक्ष ज्ञानी को शुभ और अशुभ में से किसी की भी इच्छा

नहीं है। चैतन्यसुख में लीन होकर पर से विरक्त होना - यह एक ही निर्भयता का स्थान है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई स्थान निर्भय नहीं है।

चैतन्य के आश्रय से जो सुख प्रगट हुआ; वह स्थायी रहता है, उसमें कोई उपद्रव नहीं है, वह अनुपम है। संसार का सुख कल्पित है, उपद्रवयुक्त है, क्षणिक है; जबकि चैतन्यभावना से उत्पन्न सुख उपमारहित, उपद्रवरहित और नित्य है। ऐसे चैतन्यसुख के सामने शुभकर्म भी दुःखरूप है; अतः उसे भी छोड़कर ज्ञानी अपने चैतन्य चिन्तामणि को स्फुटपने प्राप्त करते हैं।^१ मुनियों ने दुष्कृत्य का परिणाम तो छोड़ा ही है, तथा महाव्रतादि का शुभ परिणाम भी छोड़कर वे अतुल चैतन्यस्वरूप में स्थिर होते हैं ह्य यही निश्चय से प्रत्याख्यान है।^२”

इन छन्दों में प्रगट किये भाव का सार यह है कि जिसप्रकार अमृत भोजन का स्वाद लेनेवाले देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता; उसीप्रकार ज्ञानात्मक सहज सुख को भोगनेवाले ज्ञानीजनों-मुनिराजों का मन सुख के निधान चैतन्य चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं लगता।

अन्य द्रव्यों से अर्थात् अन्य द्रव्यों संबंधी विकल्प करने से उत्पन्न न होनेवाले तथा अनुपम निजात्मा के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले अतीन्द्रिय सुख का स्वाद चख लेने के बाद पुण्योदय से प्राप्त होनेवाला पंचेन्द्रिय विषयोंवाला सुख दुःखरूप ही है। उसका तो मात्र नाम ही सुख है, वस्तुतः वह सुख नहीं, दुःख ही है। ज्ञानी जीव उस लौकिक सुख को छोड़कर ज्ञानानन्दस्वभावी अपने आत्मा को प्राप्त करते हैं॥१३०-१३१॥

चौथा छन्द इसप्रकार है -

(आर्या)

को नाम वक्ति विद्वान् मम च परद्रव्यमेतदेव स्यात् ।

निजमहिमानं जानन् गुरुचरणसमर्चनासमुद्भूतम् ॥१३२॥

(दोहा)

गुरुचरणों की भक्ति से जाने निज माहात्म्य ।

ऐसा बुध कैसे कहे मेरा यह परद्रव्य॥१३२॥

गुरु चरणों की भक्ति के प्रसाद से उत्पन्न हुई अपने आत्मा की महिमा को जाननेवाला कौन विद्वान यह कहेगा कि यह परद्रव्य मेरा है।

तात्पर्य यह है कि कोई भी ज्ञानी समझदार व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि यह परद्रव्य मेरा है॥१३२॥

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ७८२-७८३

२. वही, पृष्ठ ७८४

नियमसार गाथा ९८

अब इस गाथा में यह बताते हैं कि अबंधस्वभावी आत्मा का ध्यान करना ही धर्म है। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

पयडिद्विदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा ।

सो हं इदि चिंतिज्जो तत्थेव य कुणदि थिरभावं ॥९८॥

(हरिगीत)

जो प्रकृति थिति अनुभाग और प्रदेश बंध बिन आत्मा ।

मैं हूँ वही - यह सोचता ज्ञानी करे थिरता वहाँ ॥९८॥

प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभागबंध से रहित जो आत्मा है; मैं वही हूँ। -
ऐसा चिन्तवन करता हुआ ज्ञानी उसी में स्थिर भाव करता है।

इस गाथा का भाव टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं-

“यहाँ बंध रहित आत्मा को भाना चाहिए हूँ ऐसी शिक्षा भव्यों को दी गई है। शुभाशुभ मन-वचन-काय संबंधी कर्मों से प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं और चार कषायों से स्थिति और अनुभाग बंध होते हैं। इन चार बंधों से रहित सदा निरुपधिस्वभावी आत्मा ही मैं हूँ - ऐसी भावना सम्यग्ज्ञानी जीव को सदा भाना चाहिए।” (क्रमशः)

श्री टोडरमल स्मारक भवन में -

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

श्री टोडरमल स्मारक भवन स्थित त्रिमूर्ति एवं सीमंधर जिनालय के नवीनीकरण का कार्य प्रारंभ किया गया है। इसके अन्तर्गत 'त्रिमूर्ति एवं सीमंधर जिनालय' नवीन साज-सज्जा के साथ बनकर तैयार हो रहे हैं। इसी क्रम में त्रिमूर्ति जिनालय पर 2 नई वेदियाँ एवं सीमंधर जिनालय में 1 नई वेदी बन रही है, जिन पर नवीन प्रतिमाओं को विराजमान किया जावेगा।

इन प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा हेतु एक आदर्श, भव्य एवं ऐतिहासिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन 24 से 30 दिसम्बर 2012 तक किया जा रहा है। यह घोषणा डॉ. भारिल्ल द्वारा 2 मार्च को आयोजित शिलान्यास समारोह के दौरान की गयी।

ज्ञातव्य है कि टोडरमल स्मारक भवन में सन् 1991 की प्रतिष्ठा के बाद लगभग 22 वर्षों बाद यह विशाल आयोजन सम्पन्न होने जा रहा है।

इसके संदर्भ में प्रगति के समाचार यथा समय प्रकाशित किये जाते रहेंगे।

